International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(2): 123-124

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(2): 123-124
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 14-01-2019
Accepted: 18-02-2019

Dr. Deepak Mishra
Sanskrit Department, Veer Bahadur Singh Purvanchal University Jaunpur UP, Prayagraj, Uttar Pradesh, India

Corresponding Author:
Dr. Deepak Mishra
Sanskrit Department, Veer Bahadur Singh Purvanchal University Jaunpur UP, Prayagraj, Uttar Pradesh, India

वैदिक साहित्य एवं पर्यावरण वर्तमान परिप्रेक्ष्य

Dr. Deepak Mishra

प्रस्तावना

वैदिक काल पर्यावरण का स्वर्णिम काल था। समस्त चराचर प्रकृति विशद और प्रसन्न थी। शीतल–मन्द–सुगन्ध वायु प्राणों का संचार करती थी। निर्मल जल पवित्र नदियों और जलाशयों में अवगाहन करने वालों के शरीरों को ही मात्र स्वच्छ नहीं करते थे अपितु अन्तःकरण की विशुद्धि में भी सहायक थे। ऋषियों के आश्रम, आचार्य कुलपतियों के गुरुकुल सुरम्य–शान्त कान्तार–प्रान्त में अवस्थित थे। सर्वत्र यज्ञ के वितत धूम वातावरण (पर्यावरण) को न केवल विशुद्ध करते थे अपितु एक मानसिक शान्ति और आध्यात्मिक प्रीति भी उत्पन्न करते थे। वनों की अविच्छिन्न हरीतिमा के उल्लास में वन्य जीवों का स्वच्छन्द विचरण और पक्षियों का कलकूजन मधुर रस घोलता था। ऐसी मनोहर–निरापद प्रकृति के सुरम्य क्रोड में (पर्यावरण) बैठकर त्रिकालज्ञ ऋषियों ने अपनी साधना के योग से जिन मंत्रों का साक्षात्कार किया वे सत्य ही ईश्वर के निःश्वसित हैं– ''यस्य निःश्वसितं वेदाः'। ये वही ज्ञान के परम आकर वेद हैं जो देवों के अमर काव्य हैं और मानव मात्र की अमूल्य निधि हैं–पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।[1] ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के तृतीय सूक्त के अन्तिम तीन मन्त्रों में सरस्वती की स्तुति है। सरस्वती ज्ञान की देवता और सरस्वती नदी, दोनों ही रूप प्रख्यात हैं। नदी के रूप में उसकी विपुल जल राशि का वर्णन ऋषि के शब्दों में वर्तमान है–

पावकाः नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः 1–3.10
चोदयित्री सुनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती 1–3–11
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति[2] 1–3–12

उपर्युक्त मन्त्रों में पुण्यतोया सरस्वती नदी की विशाल जलराशि और उसमें उठने वाली तरंगों की नैसर्गिक छवि का चारुचित्रण है जिसका साक्षात्कार करके सद्विचारों का उत्प्रेरण होता है। इन्द्र की प्रियसत्यरुपा वाणी पकी हुई (पके हुए फलों से लदी) शाखा जैसी है–

एवा हयस्य सुनृता विरप्शी गोपती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे।[3] 1.8.8

स्वस्थ वृक्ष की डाल, जो पके सुन्दर फलों से लदी हुई है, मनोरम तो लगती ही है, याचक के लिए प्रकृति का उपहार–फल–प्रस्तुत करती है। वनस्पतियों से ही देवताओं के लिए हविसामग्री उपलब्ध होती है। वे वनस्पति चेतना अर्थात् ज्ञान प्रदान करते हैं। अधोलिखित मन्त्र में वनस्पति से हवि प्रदान करने के साथ ही चेतना अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने की भी प्रार्थना की गई है–

अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः।
प्र दातुरस्तु चेतनम्[4]। 1.13.11

वनस्पति भी चेतन प्राणी है– यह वैज्ञानिक तथ्य हमें उपर्युक्त मन्त्र में स्पष्टतः प्राप्त होता है। वस्तुतः चेतन ही चेतना प्रदान कर सकता है– इस सिद्धान्त से वनस्पतियों में भी चेतना है– यह उपर्युक्त मन्त्र का निहितार्थ है। वैज्ञानिकों ने वनस्पतियों में भी चेतना होती है– यह अभी प्रायः सौ, डेढ़ सौ वर्ष पहले सिद्ध किया है किन्तु वनस्पतियों में चेतना का ज्ञान हमारे प्राचीनतम वाङ्मय में उपलब्ध है।[5]

जल स्वयं औषधि रूप है और जल के भीतर सभी औषधियाँ विद्यमान हैं। अधोलिखित मन्त्रों में ऋषि इसी तथ्य का उद्घाटन करता है–

अप्सु मे सोमो अब्रवीदुन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजी। 1.23–20
आपः पृणीत भेषजं वरुथं तन्वेदूमम्।
ज्योक् च सूर्य दृशे। 1.23.21
इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि।
यद् वाहमभिदुद्रोह यद् वा शेप उतानृतम 1.23.22
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा[6] 1.23.23

अर्थात् जल के भीतर सभी औषधियाँ हैं। जल सम्पूर्ण औषधि स्वरूप है। यह जल मेरे शरीर में सभी औषधियों को ले आये, पूरण करे। मैं जल में अवगाहन कर रहा हूँ। मेरे अन्दर (आनन्द) का संचार हो। ऋग्वेद में सिन्धु अर्थात् नदियों की महिमा का अनेकत्र वर्णन किया गया है। ग⃝ा आदि सात नदियों को जल विशेष का उत्पादक बताया गया है–
''सिन्धुभिः सप्त मातृभिः''[7] 1.34.8
तेज बहने वाली हवा अपने वेग से पर्वतों को कँपाती है और वृक्षों को एक दूसरे से अलग कर देती है–

प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि वि⃝चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा दूव देवासः सर्वया विशा।[8] 1.39.5

पर्वतों, औषधियों, जलों और मनुष्यों में जो धन है उस सबका राजा (स्वामी) अग्नि है जैसे कि निश्चल किरणों का स्वामी सूर्य है–

आ सूर्ये न रश्मयों ध्रुवासो वैश्वानर दधिरेऽग्ना वसूनि।
या पर्वतेध्वोषधीष्वप्सु या भानुषेष्वसि तस्य राजा।[9] 1.59.3

अग्नि नदियों (बहने वाले जल) का बन्धु है और वन पृथ्वी के रोयें (औषधियों) के रूप में हैं। जल इन वनों को बढ़ाता है किन्तु वायु का सहयोग पाकर यह अग्नि इन वनों को जला डालता है–

जामिः सिन्धुनां भ्रातेव स्वस्त्रामिभ्यान्त राजा वनान्यति
यद् वातजूतो, वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः।।[10] 1.65. 7–8

हवाओं से प्रेरित होकर मेघ पृथिवी पर मधुर जल की वर्षा करते हैं, भूमि को तृप्त करके औषधियों और अन्नादि का पोषण करते हैं। जिन सरिताओं से हमारी गायों के लिए पीने का जल मिलता है और जिनके द्वारा यज्ञों में हवि बनाया जाता है उस जल के गुणों का अनुसन्धान कर उसकी प्रशंसा करनी चाहिए–

अपो देवीरुपं हृये यत्र गावः पिबन्ति नः ।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः।[11] अथर्ववेद– 1.4.3

कृषि आदि कार्यों के लिए पृथिवी को खोदते हुए मनुष्य स्वयं उस पीड़ा का कैसा अनुभव करते हुए दुःख एवं प्रायश्चित व्यक्त करते हैं–

यत् ते भूमि विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पितम्।।[12] अथर्ववेद– 12.1.35

पर्यावरण के प्रति मानव की कल्याणपूर्ण चेतना की अभिव्यक्ति उपर्युक्त मन्त्र में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। भूमि, दान एवं क्षमाशीलता के द्वारा समस्त जीवों का पोषण करती हुई पर्यावरण को चारु व्यवस्थित रखती है– इसका अनुभव हमारे पूर्वजों ने भलीभाँति किया था। इसलिए वे पृथिवी को माता मानकर उससे प्रार्थना करते हैं–

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रातिष्ठम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्।[13] 12.1.63

यह सर्वविदित तथ्य है कि एक ही वृक्ष न जाने कितने प्राणियों का कल्याण करता है। हमें एक पुत्र की भाँति वृक्षों का सदैव पालन पोषण करना चाहिए–

दशकूपसमा वापी दशवापीसमा ह्रदः।
दशह्रदः समः पुत्रो दशपुत्रो समो द्रुमः।।

संदर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृत–वाङ्मय और पर्यावरण–संरक्षण – डा0 प्रभुनाथ द्विवेदी– पेज–53 (लघु शोध) महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी– 1996
2. ऋग्वेद संहिता– भट्टाचार्य श्रीपाद शर्मा– पेज–2 स्वाध्याय मण्डल, बलसाड–संस्करण 1969
3. वही पेज–4
4. वही पेज–7
5. संस्कृत वाङ्मय और पर्यावरण –संरक्षण –डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी– पेज–55
6. ऋग्वेद संहिता– भट्टाचार्य श्रीपाद शर्मा, पेज–12
7. वही पेज–21
8. वही पेज–26
9. वही पेज–41
10. वही पेज–46
11. अथर्ववेद (खण्ड–1)– आचार्य डा0 मुंशी राम शर्मा 'सोम' पेज–238 भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ संस्करण 1992
12. अथर्ववेद (द्वितीय खण्ड)– पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य पेज–639 संस्कृति संस्थान, बरेली संस्करण–1969
13. वही पेज–644